

# श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 27 — इन्द्र और सुरभि की स्तुति

5 October 2026



कामधेनु सुरभि के दूध से और ऐरावत की सूँड में उठाए गए आकाशगंगा के जल से स्नान कराए जाकर ब्रज का वह गोपबालक अपना सबसे प्रिय नाम पाता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। गोवर्धन पर उमड़ी वर्षा थम चुकी है, और दशम स्कन्ध के इस सत्ताईसवें अध्याय में दो अतिथि चुपचाप उस बालक के पास आते हैं जिसने पर्वत उठा रखा था — स्वर्ग के लज्जित राजा इन्द्र, और गौओं की माता सुरभि।

## अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)
- अध्याय: 27 (सप्तविंश अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: भगवान् इन्द्र और माता सुरभि की स्तुति
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: ब्रज में गोवर्धन पर्वत के समीप एक एकान्त स्थान
- केंद्रीय विषय: इन्द्र का पश्चात्ताप; प्रभु की यह शिक्षा कि जिस पर वे कृपा करना चाहते हैं उसी की सम्पदा हर लेते हैं; सुरभि की प्रार्थना और कृष्ण का गोविन्द-रूप में अभिषेक
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 1-28
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

## पूर्व अध्याय का संदर्भ

पिछले अध्याय में ब्रज के गोप, उस बालक के कर्मों से विस्मित होकर, नन्दजी से पूछते हैं कि उनका पुत्र वस्तुतः कौन है; और नन्दजी उन्हें गर्गाचार्य के वचन सुनाते हैं — कि यह बालक गुण, तेज और कीर्ति में नारायण के समान है। उनका विस्मय पूजा में बदल जाता है। अब वह देवता, जिसका अभिमान उसी उठे पर्वत ने चूर किया था, स्वयं अपनी बात कहने उतरता है।

## दो अतिथि गोवर्धन की ओर उतरते हैं

श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कथा का सूत्र फिर उठाया। पर्वत उठाया जा चुका था, मूसलधार वर्षा हार चुकी थी, और खुलते आकाश के नीचे ब्रज सकुशल खड़ा था। तब दो लोकों से दो जिज्ञासु एक छोटे बालक की ओर चल पड़े: गौओं के स्वर्गीय धाम गोलोक से कामधेनु सुरभि कृष्ण के पास आई, और अपने स्वर्ग से आए वर्षा के स्वामी इन्द्र (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 1)।



पर्वत रखा जा चुका और ब्रज सुरक्षित है; तब दो लोकों से दो जिज्ञासु आते हैं — गोलोक से सुरभि और अपने स्वर्ग से इन्द्र (श्लोक 1)।

## स्वर्ग का राजा अपना मुकुट कृष्ण के चरणों में रखता है

इन्द्र गर्जना और सेना के साथ ठाट से नहीं आए। वे लज्जा लेकर आए। उन्होंने प्रभु का तिरस्कार किया था और यह वे जानते थे, इसलिए ऐसा एकान्त स्थान खोजा जहाँ कोई उन्हें न देखे, और वहाँ झुककर अपने मुकुट से कृष्ण के चरणों का स्पर्श किया।

विविक्त उपसङ्गम्य व्रीडीतः कृतहेलनः ।

पस्पर्श पादयोरेन किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥

*vivikta upasaṅgamy vrīḍitaḥ kṛta-helanaḥ pasparśa pādayor enaṁ kirīṭenārka-varcasā*

अर्थ: अपने किए हुए अनादर से लज्जित होकर उन्होंने एकान्त में प्रभु के निकट जाकर सूर्य के समान तेजस्वी अपने किरीट से उनके चरणों का स्पर्श किया। (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 2)

उन्होंने इस अमित-तेजस्वी बालक की महिमा सुनी भी थी और अब देख भी ली थी। तीनों लोकों के स्वामित्व से उपजा गर्व उनमें शेष न रहा, और हाथ जोड़कर वे बोलने लगे (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 3)।



अपने अपराध से लज्जित स्वर्गपति एकान्त स्थान खोजकर सूर्य-सा दीप्तिमान किरीट कृष्ण के चरणों में झुका देते हैं (श्लोक 2-3)।

## इन्द्र की स्तुति

वर्षा के देवता जो कहते हैं वह सफ़ाई नहीं, स्तोत्र के भीतर छिपा हुआ अपराध-स्वीकार है; और वे वहीं से आरम्भ करते हैं जहाँ से पश्चात्तापी हृदय आरम्भ करता है — उसी के स्वरूप से जिसका उन्होंने अपराध किया। आपका स्वरूप विशुद्ध सत्त्व है, वे कहते हैं, शान्त और ज्योतिर्मय, जिसमें रजोगुण की चंचलता और तमोगुण का अन्धकार पूर्णतः जल चुके हैं; माया से रचा यह गुणप्रवाह, जो अविद्या के रहते ही टिकता है, आप में कोई स्थान नहीं पाता। फिर लोभ आदि — अविद्या के वे चिह्न जो देह को आत्मा मान लेने से जन्मते हैं — आप में कैसे हो सकते हैं? फिर भी धर्म की रक्षा और दुष्टों के निग्रह के लिए प्रभु दण्ड धारण करते हैं (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 4-5)।

आप जगत् के पिता हैं, इन्द्र आगे कहते हैं, गुरु हैं और अधीश्वर हैं; आप स्वयं वह दुरत्यय काल हैं जिसे कोई लौंघ नहीं सकता, जिसके हाथ में दण्ड है। और जब आप अपनी इच्छा से शरीर धारण कर विचरते हैं, तो वह समस्त लोकों के हित के लिए होता है — उनका मद चूर करने के लिए जो स्वयं को सृष्टि का स्वामी मान बैठे हैं। मुझ जैसे अज्ञानी, संकट की घड़ी में आपको निर्भय खड़ा देखकर, क्षण भर में अपना अहंकार गिरा देते हैं और सत्पुरुषों के मार्ग पर चल पड़ते हैं। दुष्टों के लिए भी आपकी चेष्टा अनुशासन ही है (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 6-7)।

फिर प्रार्थना आती है। ऐश्वर्य के मद में डूबा और आपके प्रभाव से अनजान मैंने आपका अपराध किया है; कृपया मुझे क्षमा कीजिए, और मेरी बुद्धि फिर कभी ऐसी असत् न हो। और इन्द्र उस अवतार का प्रयोजन भी कहते हैं जिसे उन्होंने अभी देखा है: प्रभु इस पृथ्वी पर उन सेनापतियों का अन्त करने आए हैं जो स्वयं भार हैं और और भी भार उत्पन्न करते हैं, तथा अपने चरणों के अनुगामियों के कल्याण के लिए (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 8-9)।

दो बार वे प्रणाम करते हैं: उस भगवान् पुरुष, महात्मा, वासुदेव कृष्ण, सात्वतों के पति को नमस्कार; और उन्हें नमस्कार जो अपनी ही इच्छा से देह धारण करते हैं, जिनका स्वरूप विशुद्ध ज्ञान है, जो सर्वस्व हैं, सबका बीज हैं और प्रत्येक प्राणी के भीतर बैठी आत्मा हैं (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 10-11)। अन्त में वे बिना कुछ छिपाए अपना कर्म कह देते हैं: यज्ञ भंग होने पर, मानी और तीव्र क्रोध से भरे मैंने मूसलधार वृष्टि और आँधी से गोष्ठ को नष्ट करना चाहा (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 12)। और वहीं, अपने अपराध-स्वीकार के तल पर, उनकी स्तुति विश्राम पाती है।

त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो वृथोद्यमः ।

ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥

*tvayeśānugṛhīto 'smi dhvasta-stambho vṛthodyamaḥ īśvaraṁ gurum ātmānaṁ tvāṁ ahaṁ śaraṇaṁ gataḥ*

अर्थ: मेरी अकड़ चूर हो गई और मेरा उद्यम व्यर्थ गया — हे ईश, इसी में आपने मुझ पर अनुग्रह किया है। अब मैं आपकी शरण में आया हूँ, जो ईश्वर हैं, गुरु हैं और मेरी अपनी आत्मा हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 13)

## प्रभु का उत्तर — हानि के वेश में आई कृपा

इस प्रकार स्तुति सुनकर कृष्ण प्रसन्न होकर हँसे और मेघ-गम्भीर वाणी में स्वर्गपति को उत्तर दिया (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 14)।

श्रीभगवानुवाच

मया तेऽकारि मघवन् मखभङ्गोऽनुगृह्यता ।

मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्र श्रिया भृशम् ॥ १५ ॥

*śrī-bhagavān uvāca mayā te 'kāri maghavan makha-bhaṅgo 'nugṛhṇatā mad-anusmṛtaye nityaṁ mattasyendra-śriyā bhṛśam*

अर्थ: हे मधवन्, तुम्हारे यज्ञ का भंग मैंने ही किया, और तुम पर कृपा करते हुए किया — ताकि इन्द्र-पद की सम्पत्ति से अत्यन्त मतवाले तुम मुझे निरन्तर स्मरण करते रहो। (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 15)

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ।

तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥

*mām aiśvarya-śrī-madāndho daṇḍa pāṇim na paśyati taṁ bhraṁśayāmi sampadbhyo yasya cecchāmy anugraham*

अर्थ: ऐश्वर्य और सम्पत्ति के मद से अन्धा हुआ मनुष्य हाथ में दण्ड लिए खड़े मुझे नहीं देख पाता। जिस पर मैं अनुग्रह करना चाहता हूँ, उसी को मैं सम्पत्तियों से गिरा देता हूँ। (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 16)

यहीं इस अध्याय का मर्म है, और यह शिक्षा इन्द्र से बहुत आगे तक जाती है। यज्ञ का विध्वंस दण्ड था ही नहीं; प्रभु स्वयं उसे अनुग्रह कहते हैं। पद और वैभव स्वर्गपति की दृष्टि में इतने बड़े हो गए थे कि दण्डधारी रूप में हर प्राणी के सम्मुख खड़े रहने वाले वही अदृश्य हो गए — और जो प्रभु को देख न सके, वह उन्हें स्मरण भी नहीं कर सकता। इसलिए उन्होंने वही वस्तु हर ली जो अन्धा कर रही थी। यही कारण है कि कृष्ण कहते हैं, जिस पर कृपा करनी हो उसी को वे सम्पत्ति से गिराते हैं: जो पतन विपत्ति जैसा दिखता है, वही वह द्वार है जिससे स्मृति लौट आती है।

फिर उन्होंने आशीर्वाद देकर उसे विदा किया: अब जाओ इन्द्र, तुम्हारा कल्याण हो; मेरा आदेश पालन करना; अपने अधिकार में स्थित रहो, कर्तव्य में लगे और अहंकार से रहित (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 17)। सिंहासन छोड़ा नहीं जाता। वह धोकर लौटाया जाता है।



मेघ-गम्भीर वाणी में हँसते हुए प्रभु बताते हैं कि यज्ञ-भंग उन्होंने कृपा से किया, और इन्द्र को निरभिमान होकर अपने कर्तव्य में लौटा देते हैं (श्लोक 14-17)।

## माता सुराभे को प्रार्थना

अब मनस्विनी कामधेनु ने कृष्ण को प्रणाम किया और अपनी सन्तानों सहित, गोपवेश में खड़े उस सर्वेश्वर से निवेदन किया (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 18)। कृष्ण, कृष्ण, उन्होंने कहा, हे महायोगिन्, हे विश्वात्मन् और विश्व के उद्गम — हे अच्युत, लोकनाथ आप के रहते हम अनाथ नहीं, सनाथ हो गई (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 19)।

त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ।

भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥ २० ॥

*tvaṁ naḥ paramakaṁ daivaṁ tvaṁ na indro jagat-pate bhavāya bhava go-vipra devānāṁ ye ca sādhaḥ*

अर्थ: आप ही हमारे परम देव हैं; हे जगत्पते, आप ही हमारे इन्द्र हैं। गौओं, ब्राह्मणों, देवताओं और जो भी साधु हैं — उन सबके कल्याण के लिए आप स्थित हों। (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 20)

फिर वे वही माँगती हैं जिससे इस अध्याय को उसका नाम मिला है। ब्रह्माजी से प्रेरित होकर, वे कहती हैं, हम आपका अपने इन्द्र के रूप में अभिषेक करने आई हैं, क्योंकि हे विश्वात्मन्, आप पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतीर्ण हुए हैं (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 21)। गौएँ न वर्षा माँगती हैं, न चरागाह। वे चाहती हैं कि उनका राजा स्वयं प्रभु हों।



कामधेनु अपनी सन्तानों सहित कुछ भी नहीं माँगतीं, केवल यही कि प्रभु स्वयं गौओं के इन्द्र बनें (श्लोक 18-21)।

## दूध, आकाशगंगा का जल, और गोविन्द नाम

निवेदन कर चुकने पर सुरभि ने अपने थनों के दूध से उन्हें स्नान कराया। और इन्द्र ने भी, देवमाताओं की प्रेरणा से तथा देवर्षियों के साथ, उस दाशार्ह-वंशी का अभिषेक आकाशगंगा के उस जल से किया जिसे गजराज ऐरावत ने सूँड़ में उठा रखा था — और फिर उन्हें एक नाम दिया।

एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसात्मनः । जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः ॥ २२ ॥

इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं चोदितो देवमातृभिः । अभ्यसिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥

*evam kṛṣṇam upāmantrya surabhiḥ payasātmanaḥ jalair ākāśa-gaṅgāyā airāvata-karoddhṛtaiḥ  
indraḥ surarṣibhiḥ sākam codito deva-mātṛbhiḥ abhyasiñcata dāśārhaṁ govinda iti cābhyadhāt*

अर्थ: इस प्रकार कृष्ण से निवेदन कर सुरभि ने उन्हें अपने दूध से नहलाया; और देवमाताओं से प्रेरित तथा देवर्षियों से युक्त इन्द्र ने ऐरावत की सूँड़ में उठाए आकाशगंगा के जल से दाशार्हनन्दन का अभिषेक किया और उन्हें 'गोविन्द' कहकर पुकारा। (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 22-23)

## स्वर्ग और पृथ्वी आनन्द में डूब जाते हैं

वहाँ एकत्र तुम्बुरु, नारद तथा अन्य गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण श्रीहरि का वह यश गाने लगे जो लोकों का मल धो देता है, और अप्सराएँ आनन्द में नाच उठीं। प्रमुख देवताओं ने स्तुति करते हुए उन पर अद्भुत पुष्पों की वर्षा की। तीनों लोक परम आनन्द से भर गए, और गौओं ने इतना दूध बहाया कि धरती भीग गई (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 24-25)।

पृथ्वी ने भी वैसा ही उत्तर दिया। नदियाँ नाना प्रकार के मधुर रस बहाने लगीं, वृक्षों से मधु चूने लगा, बिना जोते खेतों में अन्न पक गया, और पर्वतों ने अपनी ढलानों पर मणियाँ प्रकट कर दीं। और कृष्ण के अभिषेक के पश्चात्, शुकदेवजी ने अपने श्रोता से कहा, स्वभाव से क्रूर प्राणी भी अपना वैर भूल गए (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 26-27)।



तुम्बुरु, नारद और दिव्य गायक श्रीहरि का यश गाते हैं, पुष्प बरसते हैं, गौएँ दूध से धरती भीगो देती हैं और तीनों लोक आनन्दित होते हैं (श्लोक 24-27)।

इस प्रकार अभिषेक पूर्ण हुआ, और जो लज्जा लेकर आया था वह शान्ति लेकर लौटा।

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ।

अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥

*iti go-gokula-patim govindam abhiṣicya saḥ anujñāto yayau śakro vṛto devādibhir divam*

अर्थ: इस प्रकार गौओं और गोकुल के स्वामी गोविन्द का अभिषेक कर, तथा उनकी अनुमति पाकर, इन्द्र देवताओं आदि से घिरे हुए स्वर्ग को चले गए। (स्कन्ध 10, अध्याय 27, श्लोक 28)

## इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. सच्चा पश्चात्ताप केवल जीभ से नहीं, देह से होता है। स्वर्ग का राजा न दूत भेजता है, न कोई सफ़ाई गढ़ता है; वह स्वयं आता है, और सबसे पहले अपना मुकुट उतारकर रख देता है (श्लोक 2)। जहाँ अपराध का दुख सच्चा होता है, वहाँ वह झुकता है।
2. टूटा हुआ अभिमान शरण का आरम्भ है। इन्द्र अपनी चूर हुई अकड़ को ही कृपा कहते हैं और उसी साँस में ईश्वर, गुरु और आत्मा रूप प्रभु की शरण लेते हैं (श्लोक 13)। जो हमें झुकाता है वह हमारा विनाश नहीं, निमन्त्रण है।
3. प्रभु जो छीनते हैं, वह भी करुणा से ही छीनते हैं। यज्ञ-भंग को वे अपना उपहार बताते हैं, जो इसलिए दिया गया कि उनका स्मरण निरन्तर बना रहे (श्लोक 15)।
4. सम्पत्ति भोगने वाले से ही प्रभु को छिपा देती है। वैभव आँख को तब तक चौंधियाता है जब तक सबसे निकट खड़े वही दिखाई देना बन्द न हो जाएँ (श्लोक 16)। धन उन्हीं हाथों में सुरक्षित है जो यह याद रखते हैं कि वह किसका है।
5. सर्वोत्तम याचना दाता को ही माँगती है। सुरभि अपने गोधन के लिए समृद्धि माँग सकती थीं; उन्होंने माँगा कि प्रभु स्वयं उनके स्वामी बनें (श्लोक 20)। प्रार्थना अपने शिखर पर तब पहुँचती है जब वह वस्तुएँ माँगना छोड़ देती है।
6. प्रभु को सरलतम प्राणियों का प्रेम सबसे प्रिय है। स्वर्ग जो भी उपाधि दे सकता था, उनमें से वे वही रखते हैं जो एक गौ के अभिषेक से मिली (श्लोक 22-23) — उनसे मिली जिनके पास दूध के अतिरिक्त कुछ भी न था।

## एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय ने अपने दो याचकों को जिस ढंग से आमने-सामने रखा है, उसमें एक कोमलता है। एक के पास सब कुछ है — तीनों लोक, वर्षा, वज्र — और उसे देखने के लिए पहले अपना यज्ञ खोना पड़ता है। दूसरी के पास देने को केवल दूध है, और वह पहले क्षण से ही देख लेती है। दोनों के बीच चरणों में मिट्टी लगाए एक छोटा-सा बालक खड़ा है, और दोनों को स्वीकार करता है। हम प्रायः सुरभि से अधिक इन्द्र जैसे हैं। हमारी छोटी-छोटी सत्ताएँ — हमारी योग्यता, हमारी संचित पूँजी, हमारा नाम — आँखों पर इतनी धीमे उतरती हैं कि धुँधलापन हमें पता ही नहीं चलता। फिर कुछ छिन जाता है, हम डर जाते हैं, और उसे दुर्भाग्य कह देते हैं। हम उनकी कृपा को तब भी पहचानना सीखें जब वह हानि का मुख लगाकर आए।

## एक दैनिक भाक्ते-अभ्यास

आज अपनी खोई हुई किसी एक वस्तु को स्मरण कीजिए — कोई पद, कोई योजना, कोई निश्चय — और उस पर शोक करने के बजाय उसे इन्द्र के ही शब्दों के साथ प्रभु के चरणों में अर्पित कर दीजिए: मैं आपकी शरण में आया हूँ। फिर कुछ शान्त क्षण किसी जीव की सेवा में बिताइए, उन्हें स्मरण करते हुए जिनके प्रेम ने प्रभु को गोविन्द नाम दिया। साथ-साथ धीरे से जपते रहिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

## उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह सत्ताईसवाँ अध्याय गोवर्धन-लीला को समेटकर उस पर कृपा की मुहर लगा देता है। स्वर्ग का राजा, अपने दर्प से रहित होकर, अपना दीप्तिमान मुकुट एक गोपबालक के चरणों में रखता है और जानता है कि उसका अपमान वस्तुतः वरदान था; गौओं की माता, अपने लिए कुछ न माँगते हुए, यही माँगती हैं कि प्रभु ही उनके इन्द्र हों। उनके उसी स्नान से प्रभु का सबसे मधुर नाम जन्म लेता है। हम इस केन्द्रीय शिक्षा को थामे रहें: प्रभु हमारे हाथों से जो भी हटाते हैं, वह केवल अपने लिए स्थान बनाने को हटाते हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

## संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), सप्तविंश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: [kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-27-indra-and-surabhi-offer-prayers-hi.html](http://kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-27-indra-and-surabhi-offer-prayers-hi.html)

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट